National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2018; 1(21): 89-91
© 2018 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ सुरेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत),
भगवान परशुराम महाविद्यालय,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

Correspondence:
डॉ सुरेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत),
भगवान परशुराम महाविद्यालय,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

वैदिक कालीन गुरु-परम्परा एवं उसका महत्त्व

डॉ सुरेश कुमार

वैदिक काल में शिक्षा केवल सूचनाओं का संचय नहीं थी, बल्कि यह व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, चरित्र निर्माण और आध्यात्मिक बोध की एक सघन प्रक्रिया थी। भारतीय सभ्यता के आदिकाल से ही ज्ञान को एक पवित्र थाती माना गया है, जिसे केवल एक जीवंत माध्यम से ही हस्तांतरित किया जा सकता था। इसी आवश्यकता ने 'गुरु-शिष्य परम्परा' को जन्म दिया, जो न केवल भारत की अपितु वैश्विक शिक्षा इतिहास की सबसे अद्वितीय और प्रभावशाली व्यवस्था रही है। वैदिक परम्परा में 'वेद' का अर्थ ही ज्ञान है, और इस ज्ञान को अक्षुण्ण रखने के लिए जिस अनुशासन और पद्धति का विकास किया गया, वह गुरु-शिष्य के अटूट संबंधों पर आधारित था । यह प्रतिवेदन वैदिक कालीन गुरु-परम्परा के विभिन्न आयामों, इसके दार्शनिक आधारों, शैक्षणिक विधियों और समाज में इसके महत्व का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

गुरु की अवधारणा: व्युत्पत्ति, परिभाषा एवं दार्शनिक अधिष्ठान

वैदिक वाङ्मय में 'गुरु' शब्द का अर्थ अत्यंत गंभीर और व्यापक है। शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार, 'गु' का अर्थ है अंधकार और 'रु' का अर्थ है उसे दूर करने वाला। इस प्रकार, जो अज्ञान रूपी अंधकार को विनष्ट कर ज्ञान के दिव्य प्रकाश की ओर ले जाता है, वही गुरु है । प्राचीन भारतीय मनीषा में गुरु को केवल एक शिक्षक नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक और समाज का सुधारक माना गया है ।

गुरु का ईश्वरीय स्थान

वैदिक समाज में गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊपर प्रतिष्ठित किया गया। इसका कारण यह था कि ईश्वर का ज्ञान भी गुरु के माध्यम से ही संभव होता है। कबीरदास जी के शब्दों में "गुरू गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पाय" वाली भावना इसी वैदिक मूल्य का विस्तार है । गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश के प्रतिनिधि के रूप में देखा जाता है, क्योंकि वह ज्ञान का सृजन करता है, उसे शिष्य के भीतर सुरक्षित रखता है और अज्ञानता का विनाश करता है ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥[1]

अर्थ: गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हैं; वे ही साक्षात् परब्रह्म हैं, ऐसे गुरु को नमस्कार है।

स्कंद पुराण के 'गुरु गीता' खंड में गुरु की महिमा का विशद वर्णन मिलता है । वहां गुरु को 'अज्ञान-तिमिरांध' (अज्ञान के अंधेपन) को दूर करने वाला 'ज्ञान-शलाका' (ज्ञान रूपी अंजन की सलाई) कहा गया है ।

शिक्षकों का वर्गीकरण

स्मृति ग्रंथों और भविष्य पुराण के अनुसार, शिक्षकों को उनके कार्यों के आधार पर वर्गीकृत किया गया था :

1. आचार्य: जो शिष्य को उपनयन संस्कार देकर वेदों, कल्पों और उपनिषदों का निःशुल्क अध्यापन कराता है ।

2. उपाध्याय: जो जीविका के लिए वेदों के एक भाग या वेदांगों की शिक्षा प्रदान करता है ।

3. गुरु: जो बालक के गर्भाधान से लेकर उपनयन और वेद मंत्रों की शिक्षा का दायित्व लेता है ।

4. ऋत्विक: जो यज्ञीय कर्मकांड (अग्निहोत्र आदि) संपन्न कराता है।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥[2]

अर्थ: यज्ञ में अर्पण, हव्य, अग्नि और हवन करने वाला—सब ब्रह्म ही है।

शिष्य की संकल्पना और अनुशासन

शिष्य का अर्थ है—जो अनुशासन (शासन) के योग्य हो। वैदिक काल में विद्यार्थी को 'ब्रह्मचारी' कहा जाता था, जिसका अर्थ है ब्रह्म (ज्ञान) की खोज में संलग्न रहने वाला ।

आदर्श विद्यार्थी के लक्षण

आचार्य चाणक्य ने विद्यार्थी के लिए पांच अनिवार्य गुणों का उल्लेख किया है:

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्

समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥[3]"

ब्रह्मज्ञान के लिए शिष्य को समर्पण भाव से गुरु के पास जाना चाहिए।

शिष्य के कर्तव्य

गुरुकुल में शिष्य का जीवन सेवा और स्वाध्याय पर आधारित था। शिष्य को ब्रह्ममुहूर्त में उठकर गुरु की सेवा, आश्रम की शुद्धि, समिधा (यज्ञ हेतु लकड़ी) एकत्र करना और भिक्षाटन करना होता था । भिक्षाटन का उद्देश्य शिष्य के अहंकार को नष्ट करना और समाज के प्रति उत्तरदायित्व का बोध कराना था ।

प्रमुख संस्कार: उपनयन और समावर्तन

वैदिक शिक्षा प्रणाली दो महत्वपूर्ण संस्कारों के मध्य प्रवाहित होती थी:

1. उपनयन : इसका अर्थ है 'समीप ले जाना'। यह वह संस्कार था जिसके द्वारा बालक को आचार्य के पास ले जाया जाता था । इसके बाद बालक 'द्विज' (दो बार जन्मा) कहलाता था। गुरु बालक को 'सावित्री मंत्र' (गायत्री मंत्र) प्रदान कर शिक्षा आरम्भ करते थे ।

ॐ भूर् भुवः स्वः।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात्॥[4]

हम उस परम दिव्य सविता (सूर्य स्वरूप परमात्मा) के तेज का ध्यान करते हैं,वह हमारी बुद्धि को प्रेरित और प्रकाशित करे।

2. समावर्तन: शिक्षा पूर्ण होने पर होने वाला यह संस्कार 'घर लौटने' का प्रतीक था । इस अवसर पर गुरु अपने शिष्य को 'स्नातक' की उपाधि देते थे और जीवन की व्यावहारिक सीख देते थे।

तैत्तिरीय उपनिषद में दीक्षांत उपदेश मिलता है:

"सत्यं वद। धर्मं चर। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।[5]"

ज्ञान प्राप्ति की विधि: मौखिक परम्परा और 'श्रुति'

वैदिक काल में ज्ञान का हस्तांतरण पूर्णतः मौखिक था, इसलिए वेदों को 'श्रुति' कहा गया ।

सीखने के तीन चरण

उपनिषदों और स्मृतियों में ज्ञानार्जन की एक वैज्ञानिक पद्धति बताई गई है :

1. श्रवण: गुरु के मुख से वेदमंत्रों को एकाग्रता से सुनना और स्वर सहित कंठस्थ करना ।

2. मनन: प्राप्त ज्ञान पर तर्कपूर्ण चिंतन करना और गुरु के साथ संवाद कर शंकाओं का समाधान करना ।

3. निदिध्यासन: निरंतर अभ्यास और ध्यान के माध्यम से उस ज्ञान को अपने आचरण और अनुभव का हिस्सा बनाना ।

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्

समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥[6]

वेदों के संरक्षण की तकनीक

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्

यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः॥[7]

मंत्रों की शुद्धता बनाए रखने के लिए ऋषियों ने विशिष्ट पाठ विधियां विकसित की थीं

- प्रकृति पाठ: संहिता पाठ, पद पाठ (संधि विच्छेद), और क्रम पाठ (पदों को जोड़कर पढ़ना) ।
- विकृति पाठ: जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दंड, रथ और घन। इनमें 'घन पाठ' को सबसे कठिन और त्रुटि-रहित माना गया है।

गुरु-शिष्य संबंध: भावनात्मक और दार्शनिक आधार

गुरु-शिष्य के संबंध को "एक ही वृक्ष पर बैठे दो पक्षियों" के रूप में वर्णित किया गया है, जो उनकी आध्यात्मिक निकटता और सूक्ष्म संवाद को दर्शाता है ।

मुण्डक उपनिषद का निर्देश

मुण्डक उपनिषद स्पष्ट करता है कि ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति हेतु गुरु के पास जाना अनिवार्य है:

"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥[8]"

उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए हाथ में समिधा लेकर (विनम्रतापूर्वक) उस गुरु के पास जाना चाहिए जो वेदों का ज्ञाता (श्रोत्रिय) और ब्रह्म में स्थित (ब्रह्मनिष्ठ) हो।

प्रसिद्ध ऋषियों की वंशावली

वैदिक ज्ञान का प्रवाह ऋषियों की अटूट श्रृंखला के माध्यम से हुआ। 57 आचार्यों की नामावली मिलती है जिन्होंने पीढ़ी-दर-पीढ़ी ज्ञान को हस्तांतरित किया।

- वशिष्ठ परम्परा: इन्होंने अयोध्या के इक्ष्वाकु वंश (राम आदि) को शिक्षित किया।
- विश्वामित्र: गायत्री मंत्र के द्रष्टा और शस्त्र-शास्त्र के महान शिक्षक।
- याज्ञवल्क्य: शुक्ल यजुर्वेद के द्रष्टा और राजा जनक व मैत्रेयी के गुरु।

वैदिक शिक्षा में महिलाओं का स्थान

वैदिक समाज में महिलाओं को शिक्षा और उपनयन का पूर्ण अधिकार था। महिलाओं के दो प्रमुख वर्ग थे:

1. ब्रह्मवादिनी: जो जीवन भर अविवाहित रहकर आध्यात्मिक शोध और अध्यापन करती थीं (जैसे गार्गी, मैत्रेयी)।

2. सद्योवधू: जो विवाह होने तक गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करती थीं।

गार्गी वाचक्नवी और ऋषि याज्ञवल्क्य का शास्त्रार्थ वैदिक कालीन उच्च बौद्धिक विमर्श का चरम उदाहरण है।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥[9]

स्त्री को परिवार एवं समाज में सम्मान एवं नेतृत्व का स्थान प्रदान किया गया है।

वैदिक शिक्षा का महत्व एवं प्रासंगिकता

वैदिक कालीन गुरु-परम्परा के महत्व को निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है:

- चरित्र निर्माण: शिक्षा का मुख्य उद्देश्य 'चित्तवृत्ति निरोध' और नैतिक उत्थान था।
- निःशुल्क और सार्वभौमिक: शिक्षा सभी सुयोग्य शिष्यों के लिए निःशुल्क थी और समाज के सहयोग (दान/भिक्षा) से चलती थी।
- राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण: डॉ. अल्तेकर के अनुसार, गुरुओं ने कठिन परिस्थितियों में भी भारत की सांस्कृतिक धरोहर को अक्षुण्ण रखा।
- आधुनिक संदर्भ : वर्तमान शिक्षा नीति में 'समग्र विकास' और प्राचीन ज्ञान परम्परा के समावेश पर बल दिया गया है, जो वैदिक मूल्यों की ही वापसी है

निष्कर्ष

वैदिक शिक्षा-पद्धति भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान-परम्परा की मूल आधारशिला थी। इस प्रणाली में 'श्रुति' अर्थात् गुरु से श्रवण द्वारा ज्ञान-प्राप्ति को अत्यन्त महत्त्व दिया गया। वेदों, उपनिषदों तथा अन्य वैदिक ग्रन्थों का संरक्षण हजारों वर्षों तक मौखिक परम्परा के माध्यम से ही सम्भव हुआ। गुरु अपने शिष्यों को उच्चारण, स्मरण, मनन एवं पुनरावृत्ति की विधियों द्वारा शिक्षित करते थे, जिससे ज्ञान की शुद्धता एवं प्रामाणिकता बनी रहती थी।

वैदिक शिक्षा केवल बौद्धिक विकास तक सीमित नहीं थी, बल्कि उसका उद्देश्य व्यक्ति के नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास को सुनिश्चित करना था। गुरुकुलों में शिष्य अनुशासन, संयम, सेवा, सत्य, आत्मनियन्त्रण तथा सदाचार जैसे जीवन-मूल्यों का अभ्यास करते थे। इस प्रकार शिक्षा का स्वरूप जीवनोपयोगी एवं संस्कारप्रधान था।

गुरु-शिष्य परम्परा वैदिक शिक्षा का केन्द्रबिन्दु थी। गुरु को ज्ञान का प्रकाशक एवं शिष्य के व्यक्तित्व-निर्माण का मार्गदर्शक माना जाता था। शिष्य श्रद्धा, विनम्रता एवं समर्पण के साथ गुरु से शिक्षा ग्रहण करता था। इस सम्बन्ध में केवल ज्ञान का आदान-प्रदान ही नहीं, बल्कि संस्कृति एवं परम्पराओं का संरक्षण भी निहित था।

अतः कहा जा सकता है कि वैदिक शिक्षा-पद्धति केवल प्राचीन भारतीय परम्परा नहीं, बल्कि मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का एक उत्कृष्ट आदर्श है, जिसकी प्रासंगिकता आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है।

संदर्भ-सूची –

1. गुरुगीता 9
2. भगवद्गीता 4.24
3. मुण्डक उपनिषद 1.2.12
4. ऋग्वेद 3.62.10
5. तैत्तिरीय उपनिषद 1.11.1
6. मुण्डकोपनिषद् 1.2. 12
7. ऋग्वेद 1.164. 39
8. मुण्डक 1.2.12
9. ऋग्वेद 10.85.46